प्रस्तावना

प्रत्येक व्यक्ति नीति पूर्ण जीवन यापन करना चाहता हैं। उसके लिए वह जीवन पर्यंत नये-नये नियमों में स्वयं को तथा दूसरों को बांधता रहता हैं। मूल रूप से जीव स्वतन्त्रता प्रेमी हैं। विश्व में हम प्रत्येक जीव को अपनी स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्नशील पाते हैं। जीव मात्र की इस मूल प्रवृत्ति को मद्दे नजर रखते हुए ही हिन्दू शास्त्र में मोक्ष को जीवन का चरम पुरुषार्थ माना गया हैं। पूर्ण स्वाधीनता ही मुक्ति हैं। आचार्य शंकर का दर्शन सर्वोपरि स्वतन्त्रता को पूर्ण रूप से उद्-घाटित करने में सफल हुआ हैं। उन्होंने इस सत्य को अनावृत्त किया कि हमारे अतिरिक्त कोई दूसरा पदार्थ नहीं हैं जिसके द्वारा हम बंधन ग्रसित हो, अत: बंधन भ्रम हैं, इस भ्रम से निवृत्ति का नाम ही मोक्ष हैं। आचार्य शंकर की सर्वाधिक प्रमुख विशिष्टता इस तथ्य में निहित हैं कि वे जीव के मूलभूत स्वरूप को उद्-घाटित करते हैं। वे जीव के मूल स्वरूप को अनावृत करने में प्रयत्नशील रहे, ना कि क्रिया कर्मों की वाह्य जटिलता में। इनके दर्शन का तात्पर्य ही हैं कि अपने स्वरूप में जीव दिव्य हैं, अनादी हैं, चिद् रूप, आनंद रूप और अनन्त हैं। अत: अपने स्वभाव को उपलब्ध कर लेना अर्थात जो सदा से है उसे समझ लेना ही जीवन की अर्थवत्ता प्रदान करना हैं। यह हमें वाह्य क्रिया कलापों के विविध जालों में नहीं भटकाकर सीधे यथार्थ में उतरने कि प्रेरणा देता हैं, अत: आचार्य शंकर का दर्शन सर्वाधिक सहज, सरल और सर्व सुलभ हैं।

आचार्य शंकर सीधे केंद्र बिन्दु पर ही पहुँचते हैं अत: उनके दर्शन में हम पाते हैं वेदान्त सिकुड़ कर केंद्रीय सत्य से ही उद्भासित हैं। आचार दर्शन का सार हैं *'तत् त्वमसि'* इस सत्य की अनुभूति हो जाने पर दु:ख की विडम्बना स्वत: हमसे छूट जाती हैं, इसके साथ ही हमारी समज में यह स्पष्ट हो जाता हैं कि वस्तुत: हम परतंत्र नही स्वतंत्र हैं दुर्बल नहीं अनन्त शक्ति सम्पन्न हैं, मरण धर्मा नहीं अमर हैं, अनेक नहीं एक है और जो कुछ भी क्षणिक हैं, आरोपित हैं वे सभी मिथ्या हैं, अत: स्वत: छूट जाते हैं। अत: तात्विक और तार्किक दोनों दृष्टिकोणो से आचार्य शंकर और उनके नीति की व्याख्या सर्वाधिक उपयुक्त हैं।

आचार्य शंकर का कहना है कि ज्ञान प्राप्ति का अर्थ है पूर्णता को उपलब्ध हो जाना, और कोई भी पूर्ण वस्तु दो नहीं हो सकती। पूर्ण वस्तु एक ही हो सकती हैं। अन्यथा उसकी पूर्णता खंडित हो जायेगी, और प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण है अर्थात प्रत्येक जीव ब्रह्म ही है जो एकमात्र पूर्ण सत्ता हैं।

इस प्रकार उन्होंने ब्रह्मजीव के एकत्व के प्रतिपादन को ही मोक्ष का स्वरूप बतलाया। उन्होंने मुक्ति के केवल एक ही उपाय का प्रचार नहीं किया अपितु प्रचलित हिन्दू-धर्म के भिन्न-भिन्न देवताओं – विष्णु, शिव शक्ति तथा सूर्य आदि को लक्ष्य करके महत्वपूर्ण छंदों की रचना की। इस प्रकार उनके विविधता में अंतर्निहित एकता को परखने की शक्ति के साथ-साथ सहज स्वीकृति की प्रवृत्ति भी थी। प्रचलित धर्म में सुधार के द्वारा उन्होंने उसमें जीवन का संचार किया।

हम ब्रह्म हैं और उससे इतर कोई पदार्थ नहीं। केवल ब्रह्म ही हैं कहने में यह निहित हैं कि उनका दर्शन पूर्णत: का दर्शन हैं। हम सभी पूर्ण है एक-एक क्षण अपने आप में पूर्ण हैं, जो पूर्ण है वही सच्चे अर्थों में स्वाधीन हो सकता हैं। अत: मानव जीवन और समग्र दर्शनों का लक्ष्य इस पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति करना ही हैं। मेरे विचार से शंकर का दर्शन आध्यात्मिक स्वतन्त्रता का सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादक हैं। सत्य की अप्रोक्षानुभूति से उनका दर्शन ओतप्रोत हैं। वे हमें क्षुद्र भ्रांतियों से हटा कर यथार्थ आशावाद का आलोक दिखाते है।

इस दर्शन का मनन हमें द्वंद्वों से ऊपर ले जा कर पूर्णता में प्रतिष्ठित करता है जो हमारा यथार्थ स्वरूप हैं। शंकर का दर्शन हमें सापेक्ष से परे एक पूर्ण निरपेक्ष सत्ता की और ले जाने में सहायक हैं। आचार्य के अद्वैत का मर्म कबीर के उन शब्दों में स्पष्ट हैं-

हेरत हेरत हे सखी रहा कबीर हेराई।

बूँद समाना समुद्र में सो कत हेरन जाई॥

इस ग्रंथ का प्रयोजन वेदान्त के एक प्राय: उपेक्षित अंग 'नीतिशास्त्र' की शंकराचार्यकृत भाष्य ग्रंथो के आधार पर सांगोपांग मीमांसा प्रस्तुत करना हैं। अद्वैतेत्तर वेदान्त संप्रदायों के आक्रमण तथा पश्चमी समालोचको के आक्षेपों से प्रसारित श्री शंकर वेदान्त विषयक भ्रांतियों का निवारण कर जीवन संबंध में वेदान्त के वास्तविक मूल्य और व्यावहारिक उपयोग का प्रदर्शन इस मीमांसा का अभीष्ट विषय हैं।

श्री शंकराचार्य के अनुसार जगत् माया हैं, जीव ब्रह्म हैं और मोक्ष नैष्कर्म्य हैं। जिसमे जगत् जीव तथा जीवन तीनों का ब्रह्म में विलय हो जाता हैं। अत: अद्वैत वेदान्त में आचार (नीति) का न कोई मूल्य हैं, न उसमे आचार दर्शन (नीतिशास्त्र) का कोई स्थान हैं, इस सामान्य प्रवाद का आचार्य की उक्तियों के आधार पर निराकरण इस मीमांसा का खंडन पक्ष हैं। किन्तु इसका मुख्य ध्येय अद्वैत वेदान्त के मूल स्वरूप का निरूपण तथा जीवन और कर्म के मूल्यों से उस के सामंजस्य का प्रदर्शन हैं। उक्त प्रवाद का आधार भी अद्वैत वेदान्त के मूल स्वरूप के विषय में भ्रांति हैं, अत: अद्वैत के स्वरूप निरूपण द्वारा ही इसका निराकरण अधिक उचित और उपयोगी जान पड़ा। निष्कर्ष-भूत तत्त्वों के आधार पर श्री शंकर सम्मत वेदान्तगत आचार दर्शन के स्वरूप, सिद्धान्त और प्रयोजन का विवेचन किया गया है।

भारतीय धर्म और नीति का आधार वेदान्त दर्शन हैं, यह वह सर्व व्यापनी जीवन शक्ति है जो सदियों से भारतीय धर्म और अन्य दर्शनों को अनुप्राणित करती आ रही हैं तथा आज भी उसे पतनोन्मुख होने से बचा रही हैं। वेदान्त में ही वह नितांत मौलिक विचार धारा हैं जो इस भूमि में जन्म लेने वाली विचारधाराओं को मूलगत आधार-प्रदान करती हैं। यह सुविधित हैं कि वेदान्त की मूल विचारधारा अद्वैत सिद्धान्त ही हैं। वेदान्त दर्शन के अद्वैतवाद का प्रचार भारत में बहुत प्राचीन काल से हैं किन्तु जगद्-गुरु शंकराचार्य ने इसको केवल नूतन और परिष्कृत रूप ही नहीं दिया, बल्कि सबसे अधिक इसका प्रचार और प्रसार भी किया। इसी कारण अद्वैतवाद शंकर मत के नाम से विख्यात हैं।

इस शोध प्रबंध में मैंने शंकरके दर्शन में नीति की अवधारणा, मूल प्रवृत्तियों एवं मुख्य विचारधारा को उभारने का प्रयत्न किया हैं। हालांकी उनमें सैद्धान्तिक परिपक्वता एवं आध्यामिक गहराई इतनी विशद हैं कि उसे शब्दों में नहीं बांधा जा सकता, उसे तो अपरोक्ष अनुभूति में ही जाना जा सकता हैं। जिस प्रकार समुद्र कि गहराई को नहीं मापा जा सकता तथा आकाश कि ऊँचाई को नहीं बताया जा सकता उसी प्रकार आचार्य शंकर के आध्यामिक गहराई एवं दार्शनिक ऊचाई को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

इस लघु-शोध में मैंने आचार्य शंकर के दर्शन में नीति की अवधारणा पर गहन चिंतन करते हुए इस शोध को चार अध्यायों में विभक्त किया हैं।

प्रथम अध्याय

भारतीय दर्शन एवं धर्म शास्त्रों में नीति

इस अध्याय में हिन्दू शास्त्रों में निहित नीति की अवधारणा पर विभिन्न शास्त्रों के मत एवं वेदों से लेकर मीमांसा दर्शन तक संक्षिप्त रूप से वर्णन किया गया हैं।भारतीय दर्शन में चार्वाक दर्शन के भौतिक सुखवाद, बौद्ध के पंचशील एवं जैन के पंचमहाव्रत, न्याय और वैशेषिक के अदृश्य की सत्ता एवं परम नि:श्रेयस, सांख्य और योग के यम-नियम, मीमांसा का सुखवाद का वर्णन करते हुए निहित नीति का उल्लेख हैं।

द्वितीय अध्याय

आचार्य शंकर का जीवन और दर्शन

इस अध्याय में आचार शंकर के जन्म तथा विलक्षण व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया हैं। उनके जीवन का इतिवृत प्रस्तुत किया गया हैं जो हिन्दू इतिहास में नितांत दुर्लभ हैं। बत्तीस वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने हिन्दू धर्म और दर्शन के जीर्णोद्धार का महनीय कार्य किया। इसमें बताया गया हैं कि उनका कृतित्व कई अर्थों में अद्वितीय हैं।

तृतीय अध्याय

वेदान्त में आचार दर्शन

आचार्य शंकर ने नीति के अंतर्गत जीवन को उसके सही स्वरूप में जीने की कला से अवगत कराया, व्यवहार एवं परमार्थ में भेद एवं अभेद रूप का वर्णन करे हुए निहित नीति को दर्शाया हैं। साधन चातुष्ट के द्वारा आत्मा का अपने स्वरूप से अवगत होना अर्थात तत् त्वमसि को जानना।

चतुर्थ अध्याय

निष्कर्ष

आचार्य शंकर व्यवहार और परमार्थ के भेद को मानते हैं यह भेद माया के कारण हैं। वास्तव में जीव और जगत् सभी ब्रह्म ही हैं, हमें विभिन्नता माया के आवरण और विक्षेप के कारण प्रतीत होता हैं। अत: जैसे ही जगत् का स्वरूप सिद्ध होता है तो हमें सांसारिक जीवन के लिए नीति की आवश्यकता पड़ती हैं।

समालोचना